जेएनयू परिसर

वर्ष-1 अंक-1 जनवरी-जून 2013

संपादकीय / 2

बातचीत / 3
सुधीर कुमार सोपोरी
सौमित्र मुखर्जी

अध्ययन कक्ष / 11
सुधा पई

पाठ्यक्रम संवाद : हिंदी / 14
गंगा प्रसाद विमल, मैनेजर पाण्डेय

लेखक की दुनिया / 18
तुलसी राम

आत्मकथा / 20
मणिकर्णिका : तुलसी राम

विचार / 23
आनन्द कुमार, कमल मित्र चिनॉय

सृजन / 30
केदारनाथ सिंह

लेख / 32
बृजेश कुमार, गणपत तेली

अनुवाद / 37
अनीता खन्ना, राम चंद्र गुप्ता, मीनाक्षी सुन्द्रियाल

कविता / 42
गोबिंद प्रसाद, संदीप चटर्जी, रमेश चन्द्र जोशी

अंतर विमर्श / 45
गिरीश नाथ झा, गंगा सहाय मीणा

यादों के गलियारे से / 51
यशवंत सिंह, सुभाष शर्मा

गंगा ढाबा / 56
संदीप सिंह

समीक्षा / 58
संदीप जायसवाल

गतिविधियाँ / 60
वार्षिक सम्मेलन, व्याख्यान

संपादक-मंडल

अध्यक्ष
प्रो. वरयाम सिंह

सदस्य
प्रो. सौमित्र मुखर्जी
डॉ. संदीप चटर्जी
डॉ. देवेन्द्र कुमार चौबे
डॉ. डी. के. लोबियाल
डॉ. मणीन्द्र नाथ ठाकुर
श्रीमती पूनम एस. कुदेसिया

संपादन सहयोग
सुनीता और देवांजन खुटिया

विशेष सहयोग
गणपत तेली

प्रबंध संपादन सहयोग
के. एम. शर्मा
ओम प्रकाश दीवान
डॉ. सूर्य प्रकाश

आवरण चित्र
डॉ. गोबिन्द प्रसाद

संपर्क
संपादक
जेएनयू परिसर
हिंदी एकक
301, प्रशासनिक भवन
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

दूरभाष : +91 11 26704023, 26704283

ई–मेल : jnuparisar@mail.jnu.ac.in & hindiunit@mail.jnu.ac.in

संपादन / संचालन : अवैतनिक

जेएनयू की इस गृह पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखकों के हैं। उनसे विश्वविद्यालय अथवा संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं। उसके लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

संपादकीय

'जेएनयू परिसर' नाम से आज से सत्रह वर्ष पहले हिंदी विभाग और हिंदी एकक से जुड़े लोगों के प्रयास से पत्रिका का प्रकाशन हुआ था। दुर्भाग्य से पत्रिका का प्रकाशन प्रवेशांक तक ही सीमित रह गया। ऐसा क्यों हुआ ? इसका क्या कारण था ? जब साधन उपलब्ध थे तो पत्रिका का प्रकाशन जारी क्यों नहीं रखा गया ? यह सोचने का विषय है; पर इतना स्पष्ट है कि इस पत्रिका का पहला अंक विश्वविद्यालय के अध्यापकों और विद्यार्थियों की रचनाओं को प्रकाशित करने का प्रयास था। ऐसा नहीं था कि विश्वविद्यालय में हिंदी में लिखने वालों की कमी थी। इसलिए बाकी लोगों को भी इससे जोड़ा जाना चाहिए था।

अब 'जेएनयू परिसर' विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका के रूप में ही नहीं; बल्कि विश्वविद्यालय की गृह पत्रिका के रूप में सामने आ रही है। इसमें यहाँ के अध्यापकों, विद्यार्थियों और कर्मचारियों को एक मंच प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है। आज से चार दशक पहले विश्वविद्यालय में अध्यापकों और विद्यार्थियों की संख्या सीमित थी। अधिकांशतः सभी एक–दूसरे से भली–भाँति परिचित थे। न केवल परिचित थे; अपितु यह तथ्य सबके सामने था कि किस संकाय में क्या नवीन शोध कार्य हो रहा है। लेकिन आज हम देखते हैं कि विश्वविद्यालय में न केवल विद्यार्थियों, अध्यापकों की संख्या में इजाफ़ा हुआ है बल्कि इस विश्वविद्यालय में संकायों की संख्या भी बढ़ी है। इसके साथ ही अध्ययन संस्थानों, प्रयोगशालाओं और पाठ्यक्रमों की संख्या में वृद्धि और विविधता आयी है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि एक संकाय के लोगों को दूसरे संकाय में क्या नवीन शोध हो रहा है इसकी जानकारी न के बराबर है। जो थोड़ी बहुत जानकारी मिल भी रही है वह संचार माध्यमों से। अर्थात, यदि पर्यावरण विज्ञान संकाय का कोई वैज्ञानिक अथवा अध्यापक अपने कार्य हेतु किसी पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र से सम्मानित होता है तो हमें यह खबर अखबारों में पढ़कर मालूम होती है। इसी तरह से यदि भाषा संकाय का कोई अध्यापक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित होता है तो इसकी सूचना हमें पत्र–पत्रिकाओं से प्राप्त होती है। यह पत्रिका विश्वविद्यालय में हो रहे शोध व अन्य कार्यों से विश्वविद्यालय के सभी समुदायों को परिचित कराती रहे। ऐसा हमारा उद्देश्य है। कुछ ही वर्ष पहले विश्वविद्यालय को उत्कृष्ट शोध कार्य करने की क्षमता विकसित करने के लिए सम्मानित किया गया। इस विश्वविद्यालय को एन.ए.सी.सी. द्वारा भारत का उत्कृट विश्वविद्यालय माना है। जाहिर सी बात है कि यह सम्मान विश्वविद्यालय को विशेष रूप से ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन देने के कारण दिया गया है। हमारा मानना है कि गृह पत्रिका के रूप में विश्वविद्यालय के हर सदस्य को यहाँ हो रहे कार्य की जानकारी उपलब्ध होनी चाहिए। आशा है कि यह कार्य इस पत्रिका के माध्यम से सम्भव हो सकेगा।

वर्तमान जेएनयू प्रशासन का हिंदी के प्रति सकारात्मक रवैया देखने को मिला है। प्रशासन में हिंदी के प्रयोग को कई स्तरों पर प्रोत्साहित किया जा रहा है। लेकिन इसमें कठिनाई यह है कि सब कुछ प्रशासकीय प्रयासों से सम्भव नहीं हो सकता है। हिंदी हमारे देश की सशक्त सम्पर्क भाषा है और सम्प्रेषणीयता का उत्कृष्ट माध्यम सिद्ध हो चुकी है। हिंदी के प्रयोग में व्यक्तिगत स्तर पर भी प्रयास किए जाने की ज़रूरत है।

पत्रिका के इस अंक में हिंदी के प्रख्यात कवि केदारनाथ सिंह, तुलसी राम, गोबिन्द प्रसाद जैसे लेखकों, कमल मित्र चिनॉय, आनंद कुमार और सुभाष शर्मा जैसे प्रतिष्ठित चिंतकों, प्रो. मैनेजर पाण्डेय, प्रो. गंगा प्रसाद विमल जैसे हिन्दी के वरिष्ठतम विद्वानों, जापानी से अनीता, जर्मनी से रामचन्द्र गुप्ता और स्पेनिश से मीनाक्षी आदि भाषाविदों द्वारा अनूदित रचनाएं, रचनात्मक लेखन में सक्रिय संदीप चटर्जी, रमेश चंद्र जोशी, सूर्य प्रकाश और कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी से जुड़े गिरीशनाथ झा, गंगासहाय मीणा आदि ने अपने अपने योगदान से पत्रिका को गरिमा प्रदान करने का प्रयास किया है। गंगा ढाबा के बहाने छात्र संघ के पूर्व अध्यक्ष संदीप सिंह ने छात्र राजनीति को याद किया है। यहाँ हम जेएनयू के वीमेंस एसोसिएशन द्वारा चलाए जा रहे नर्सरी स्कूल के छात्रों की कुछ तस्वीरें भी दे रहे हैं, ताकि उनकी सृजनात्मकता सामने आए।

हमें प्रसन्नता है कि हमारे कुलपति एवं प्रतिष्ठित वैज्ञानिक प्रो. सोपोरी ने खुलकर अपने विचार व्यक्त किए हैं। इसके लिए हम उनका आभार व्यक्त करते हैं। चार दशकों से विश्वविद्यालय प्रशासन से जुड़े यशवन्त सिंह और राजनीति वैज्ञानिक प्रो. सुधा पई ने अपने विचार और अनुभव साँझा किए हैं। अंत में हिंदी एकक, पत्रिका के संपादक मण्डल और प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े तमाम साथियों का आभार।

– वरयाम सिंह

बातचीत

जेएनयू का माहौल और खुली सोच यहाँ की ताकत है

सुधीर कुमार सोपोरी

प्रो. सुधीर कुमार सोपोरी जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के कुलपति होने के साथ–साथ एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक भी हैं। यहां प्रस्तुत है, उनसे नीरा भल्ला सरीन, देवेन्द्र चौबे, गणपत तेली और सुनीता की बातचीत के महत्वपूर्ण अंश।

विज्ञान के क्षेत्र में आपकी दिलचस्पी कैसे हुई?

बात उन दिनों की है, जब मैं स्नातकात्तर की डिग्री लेकर श्रीनगर से दिल्ली आया था। कभी सोचा था कि अध्यापक बनूंगा, लेकिन दिल्ली आकर कई जगह काम की तलाश की, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और एल आई सी में भी प्रयास किया। नौकरी की ज़रूरत थी, पर कहीं कुछ नहीं मिला, सब जगह से ठोकर ही खायी। एक स्कूल में भी साक्षात्कार दिया था, पर 'ओवर क्वालीफाइड' कह कर मना कर दिया। संयोग से उसी समय दिल्ली विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. सतीश माहेश्वरी को शोधार्थी की जरूरत थी। मैं वहां पहुंचा और बातचीत के बाद उन्होंने कहा कि आप मेरी प्रयोगशाला ज्वाइन कर सकते हैं। मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ और मैंने उनसे शोध के बारे में बहुत कुछ सीखा। उनके साथ रहकर शोध और कार्य करने के प्रति एक लगन पैदा हुई। तो यह एक संयोग था।

जे.एन.यू. के बारे में आपने पहले ही सुन रखा होगा?

उन दिनों जे.एन.यू. नया–नया बना था। मेरी पीएच.डी. 1973 में पूरी हुई थी, यहाँ के जीवन विज्ञान संस्थान की स्थापना 1972 के आसपास हुई थी। और उस समय प्रो. शिप्रा गुहा मुखर्जी यहां थीं, जिन्होंने प्रो. माहेश्वरी के साथ ही पोस्ट डॉक्टरल शोध किया था। जब यहाँ पादप विज्ञान में पद आया, तो मैंने उन्हीं के कहने पर यहाँ आवेदन किया था। साक्षात्कार के बाद कुलपति जी. पार्थसारथी ने मुझे रिसर्च एसोसिएट के पद पर नियुक्त किया और एक साल बाद प्रगति देखकर मुझे सहायक प्रोफेसर बना दिया गया। मेरा जे.एन.यू से परिचय प्रो. माहेश्वरी और प्रो. मुखर्जी के जरिये हुआ। तब से यहाँ अपना कार्य कर रहा हूँ।

उन दिनों आपको जे.एन.यू का कैम्पस कैसा लगा?

उन दिनों यहाँ कैम्पस बना नहीं था। हमें कार्य करने के लिए पुराने जे.एन.यू. परिसर में जाना होता था। यहाँ सबसे अच्छा उस समय के विद्यार्थियों से संबंध लगा। एम.फिल–पीएच.डी. के पहले बैच में नीरा भल्ला सरीन, आलोक भट्टाचार्य आदि थे, वह काफ़ी होशियार बैच था। मेरा भी नया–नया पढ़ाने और शोध का अनुभव था। मुझे विद्यार्थियों से बहुत सीखने को मिला। आपस में सम्बन्ध ऐसे थे कि एक–दूसरे से सीखने को मिलता था। अच्छा माहौल था और स्वस्थ प्रतियोगिता थी, जिसमें काम करने में आनंद आता था।

हमने सुना कि आपके शुरुआती विद्यार्थियों में आपके कोई पूर्व शिक्षक भी थे?

हां, प्रो. एम.सी. शर्मा वे कश्मीर में मेरे अध्यापक थे। जब मैं पहली कक्षा लेने गया तो उन्हें कक्षा में देखकर घबराहट थी कि मैं पढ़ा पाउँगा कि नहीं, क्योंकि मुझे मेरे शोध विषय से इतर कोर्स पढ़ाने के लिए कहा गया था। तो, मुझे मेहनत भी करनी पड़ी। वे बहुत अच्छे व्यक्ति हैं, उन्होंने कभी जताया नहीं कि वो मेरे शिक्षक रहे हैं और मैं तो खैर, ऐसा कह ही नहीं सकता था। कभी –कभी ऐसी घटनाएं हो जाती हैं। लेकिन वे सभी के साथ चर्चाओं में भाग लेते थे। दोस्ताना माहौल था, रात्रि के ग्यारह बजे बाद सेमिनार का आयोजन होता था। सब लोग उनमें भाग लेते थे।

उस समय विज्ञान के किन नए क्षेत्रों को लेकर आप सब उत्साहित थे?

उन दिनों जो नये क्षेत्र जेएनयू में उभर कर आ रहे थे उनमें मोलिक्युलर बॉयोलॉजी, रेडिएशन, फोटो सिंथेसिस व न्यूरो–बायोलॉजी आदि खास थे। प्रो. आशीष दत्ता बाहर से मोलिक्युलर बायोलौजी पढ़कर आये थे। और भी सभी अपनी–अपनी ट्रेनिंग के बाद यहाँ आकर काम कर रहे थे। यहाँ का माहौल ऐसा बना हुआ था कि सभी अपना अधिक–से–अधिक योगदान विज्ञान के क्षेत्र में दे रहे थे, जिसके परिणामस्वरूप कुछ अच्छे काम जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से निकलकर आये।

उस समय यहाँ के राजनीतिक माहौल में आप विज्ञान के शिक्षक होने के नाते कैसा महसूस करते थे?

उस समय विज्ञान के छात्र उससे प्रत्यक्ष रूप से नहीं जुड़ थे । परन्तु, एस.एफ.सी. में विद्यार्थियों की बहुत रुचि थी, जब एम.ए. शुरू हुआ तो विद्यार्थियों की राजनीति में दिलचस्पी बढ़ी। लेकिन उनके लिए राजनीति किसी एजेंडा के अतंर्गत नहीं थी बल्कि मैं सोचता हूं कि वह अकादमिक एक्टिविज्म था कि इस काम को करना ही करना है। जब हमने यहाँ काम शुरू किया तो सुविधाएँ बहुत ही कम थीं, उपकरण भी पूरे नहीं थे। विद्यार्थियों ने इन सामानों के लिए धरना–प्रदर्शन किया। मैं उस वक्त अकादमिक काउंसिल का सदस्य था। छात्रों की मांग पर तत्कालीन कुलपति ने एक कमिटी बनाई जिसमें मैं भी था। हम लोगों ने सोचा कि उपकरण कहाँ से मंगाएँ जा सकते हैं, क्योंकि उन दिनों में डॉलर की बहुत दिक्कत थी। फिर पूर्वी जर्मनी से उपकरण वगैरह मँगाए गये, क्योंकि वहां से रूपये में खरीदे जा सकते थे। मैं तो यह कहूँगा कि उस समय के विद्यार्थियों का बहुत सहयोग रहा और जितनी भी सीमित सुविधाएं थीं, उसी में उन्होंने अच्छा काम करके दिखाया।

उस समय विश्वविद्यालय में प्रो. मुनिस रज़ा, प्रो. नामवर सिंह, प्रो. योगेन्द्र सिंह, प्रो. बिपन चंद्रा आदि थे। क्या इन लोगों के साथ आपका किसी स्तर पर संवाद होता था?

प्रो. मुनिस रजा के साथ तो मेरा संपर्क रहा। 1974 में मैं कावेरी का वार्डन बन गया था और प्रो. रजा डीन ऑफ स्टूडेंट वेल्फेयर थे। मुझे कुलपति ने बुलाया और कहा कि आपको नये परिसर में जाना पड़ेगा। उस समय यहां कुछ था नहीं, तो उन्होंने कहा कि आपकी शादी नहीं हुई है, आप तो वहाँ गुजारा करो। उन्होंने चार वार्डन कावेरी में नियुक्त किए। कावेरी यहां का पहला छात्रावास था। उस समय पेरियार, गोदावरी, गंगा, झेलम, सतलज छात्रावासों का निर्माण चल रहा था। फिर धीरे–धीरे कैम्पस बनता गया। अभी यहाँ इतने पेड़ नज़र आ रहे हैं, उस समय यहाँ सिर्फ धूल ही थी। अन्य प्रोफेसरों से बहुत अधिक संपर्क नहीं रहा। हाँ, उन्हें सुनने का अवसर मिलता रहता था।

वह समय आपातकाल का समय था। हम लोग सुनते हैं कि उस समय कैम्पस में काफ़ी उफ़ान था। आप उस दौर को कैसे याद करेगें?

यहाँ के कुछ लोग काफी सक्रिय थे। आपात्कालीन स्थिति में यहाँ के विद्यार्थियों की सक्रियता पर अंकुश लगाने का प्रयास किया गया। वह एक दौर था जिसे अलोकतान्त्रिक दौर कह सकते हैं। लेकिन वह दौर छोटा था, उसका ज्यादा प्रभाव हमारे विश्वविद्यालय पर नहीं रहा। मुझे खुशी है कि हमारी लोकतांत्रिक प्रक्रिया बनी रही और आज भी बरकरार है। व्यक्ति फैसला नहीं लेगा, सामूहिक फैसले लिए जाएंगे, यह जेएनयू में आज भी चल रहा है। जैसे छात्रसंघ, एसएफसी आदि यहाँ हैं। डीन आदि का कार्यकाल भी दो साल का कर दिया कि अध्यापक फैसले लेंगे, डीन और कुलपति उसे लागू करने के लिए हैं।

आप अपने कार्यकाल की शुरुआत से ही अंतरअनुशासनात्मक अध्ययन पर जोर दे रहे है। आपने इस पर व्याख्यान भी करवाये हैं। तो जीवन विज्ञान संस्थान की अंतराअनुशासनात्मक प्रवृत्तियों के बारे में तो आपने बताया। क्या ये प्रवृत्तियां उस समय अन्य संस्थानों और केन्द्रों में भी थीं?

जे.एन.यू की नींव ही अंतराअनुशासनात्मक दृष्टिकोण से रखी गई है और केवल जीवन विज्ञान ही नहीं, जे.एन.यू. के हर विभाग में यही विशेषता है। केवल अपने संस्थान और केन्द्र में बने रहने से नवीन विचारधारा का निर्माण नहीं होता है। हमें सीमित नहीं रहना है, अन्य अनुशासनों से संपर्क रखने की आवश्यकता है। जेएनयू में क्या हुआ कि अंतराअनुशासनात्मकता एक स्कूल तक ही सीमित रह गई। जैसे समाज विज्ञान में समाजशास्त्र, राजनीतिक विज्ञान, इतिहास आदि अध्ययन में तो अंतराअनुशासनात्मकता है, लेकिन विज्ञान में नहीं है। अपने अनुशासन के दायरे से बाहर झाँकने की जरूरत है। विभिन्न अनुशासनों के मिलने से ही नई धारणाएं सामने आएंगी।

आज जो काम जेएनयू में या आम तौर पर विज्ञान में हो रहा है और जीवन–समाज की जो जरूरतें हैं, इन दोनों पक्षों को आप कैसे देखते हैं?

देखिये, विज्ञान के दो पहलू हैं। पहला, फण्डामेंटल और दूसरा एप्लीकेशन अर्थात् जो ज्ञान मौजूद है, उसे समाज के भले के लिए कैसे काम में लिया जाएगा। पहला नया ज्ञान विकसित करने के बारे में है। जेएनयू में ज्यादातर नया ज्ञान विकसित करने का काम किया जाता है और यही विश्वविद्यालय का उद्देश्य भी है। लेकिन आप जो कह रहे हैं, वह बेहद जरूरी है कि उसे समाज की भलाई के लिए उपयोग में लाया जाय। कुछ काम तो उस तरह के चल रहे हैं जैसे रोगों आदि के बारे में। इस क्षेत्र में वैज्ञानिकों को मुश्किलें आती हैं, लेकिन यह जरूरी है कि हम समाज पर भी ध्यान दें।

डॉ. साहब, हमारे यहां का जो परंपरागत ज्ञान है, हम आपसे जानना चाहते हैं कि उसे आज का विज्ञान किस तरह से ले रहा है। क्या उसे विज्ञान की मुख्यधारा में शामिल किया गया है या एकदम अलग मान लिया जाता है?

जे.एन.यू. में तो इस पर काम नहीं हो रहा है, लेकिन कई और जगहों पर हो रहा है। जैसे कैंसर के इलाज में हल्दी, जीरा, अनार और नीम का प्रयोग हो रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि पारंपरिक ज्ञान से जुड़ी चीजें गुणकारी हैं, परन्तु, इन्हें वैज्ञानिक उत्पाद में बदलना थोड़ा मुश्किल होता है।